रामानन्दकृत-

लक्ष्मीसरस्वत्योर्विवादः





सम्पादक तथा व्याख्याकार :-

विद्यावाचस्पति, महामहोपाध्याय,

डा० उमारमण झा, न्यायाचार्य, M A., Ph. D., D. Litt.

दर्शनविभागाध्यक्ष,

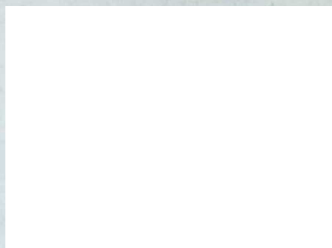
श्रीरणवीरकेन्द्रीय संस्कृत-विद्यापीठ शास्त्रीनगर, जम्मू तवी।

ति देवस्थानम्, तिरुपति

हाय्य से प्रकाशित

1984





प्रकाशक—
श्रीमतीविभा झा उजान, गंगोलीटोल, लोहनारोड,
दरभंगा, बिहार।

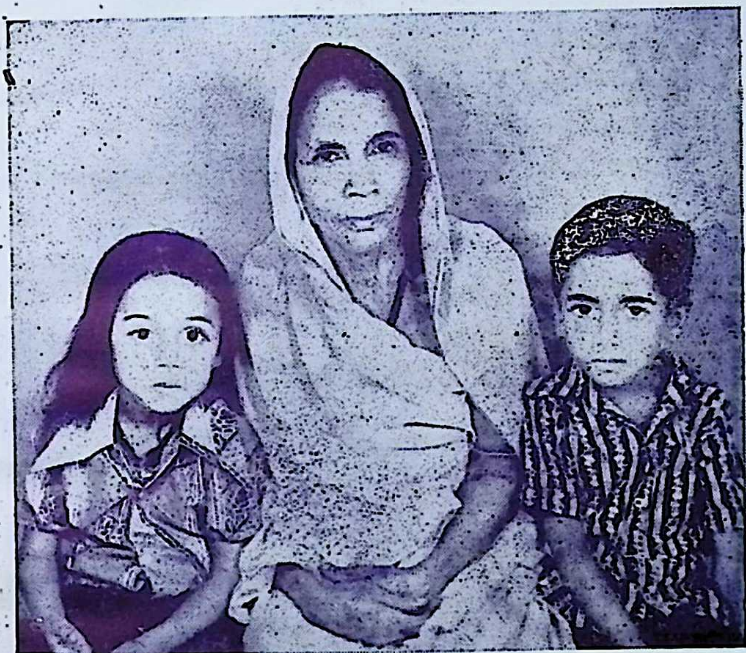
प्रथम संस्करण—1000 प्रतियां

मूल्य – दस रुपये (10-00)

मुद्रक :
एस. एस. मगोत्रा प्रिंटिंग प्रेस, जम्मू।

धन-सहायक :
तिरुमल्ला तिरूपति देवस्थानम् तिरुपति, आन्ध्रप्रदेश

समर्पण



वात्सल्यमयी माता श्रीमती सरस्वती देवी प्रसिद्ध श्रीमती सरोजा देवी (साथ में उनके पौत्र श्री गिरिजारमण झा और मथुरारमण झा) को यह ग्रन्थ सादर समर्पित है।

—उमारमण झा



शुभाशंसा

डा० उमारमण झा, न्यायचार्य, एम. ए., पी. एच-डी., डी-लिट्. ने बड़े ही परिश्रम के साथ "लक्ष्मी सरस्वत्योर्विवादः" का सम्पादन हिन्दी व्याख्या के साथ किया है ।

इस ग्रन्थ के श्लोकों से बहुत सी पौराणिक कथाएं भी सामने आ जाती हैं । लक्ष्मी और सरस्वती का वार्तालाप वस्तुतः विद्वानों के लिए मनोविनोद का अच्छा विषय होगा ।

मुझे विश्वास है कि इस ग्रन्थ के प्रकाशन से विद्वज्जन अवश्य ही प्रमुदित होंगें ।

डा० श्रीमुरलीधर पाण्डेय,
प्राचार्य,
श्रीरणवीर केन्द्रीयसंस्कृतविद्यापीठ
शास्त्रीनगर, जम्मू तवी,

भूमिका

श्रीगौरीतनयं गजेन्द्रवदनं लम्बोदरं शङ्करं
विघ्नेशं वरदायकञ्च कपिलं कार्येषु सिद्धिप्रदम् ।
भक्तानामभयङ्करं प्रतिपदं ज्ञानाकरं कीर्तिदं
श्रीविद्यादिविवर्धकं गणपतिं श्रीविघ्नराजं भजे ।।१।।

पद्मावतीं प्रति—

पद्मावतीं नौमि सदा सुभक्त्या
नारायणीं विश्वहितात्मशक्तिम् ।
सर्वैश्च देवैस्तु सदा सुपूजितां
मंगापुरस्थां करुणामयीं ताम् ।।२।।

श्रीवेङ्कटेश्वरं प्रति—

श्रीवेङ्कटेशं करुणासमुद्रं
देवाधिदेवं धृतपीतवस्त्रम्-

शेषाद्रिशैले तु सदा वसन्तं
नमामि विष्णुं भवतारणाय ॥३॥

सरस्वतिं प्रति—

मातः सरस्वति ! परे ! करबद्धप्रार्थी
इच्छाम्यहं तव कृपां करुणाप्रपूर्णाम् ।
श्रीभारति-प्रथित-कीर्ति-विचार-सारे
अज्ञस्य मे न वचसि स्खलनं यथा स्यात् ॥४॥

पितरौ प्रति—

रेवतीरमणं तातं स्वर्गतं श्रोत्रियं बुधम् ।
प्रणमामि सदा भक्त्या जननीं श्रीसरस्वतीम् ।

गुरून् प्रति—

श्रीमदनन्तलालाख्यान् परमानन्दशास्त्रिणः
गुरून् त्रिलोकनाथाञ्च प्रणमामि पुनः पुनः ॥५॥

देवताओं में लक्ष्मी और सरस्वती बहुत ही प्राचीन पौराणिक देवता हैं। लक्ष्मी धन की अधिष्ठात्री देवी हैं। समुद्रमन्थन से प्राप्त चौदह रत्नों में लक्ष्मी का भी नाम है।[1]

---

1. ततश्चाविरभूत्साक्षाच्छ्रीरमा भगवत्परा ।
रञ्जयन्ती दिशः कान्त्या विद्युत् सौदामिनी यथा ।
भाग० ८।८-१०८

भगवान् विष्णु ने इन्हें अपने वक्षःस्थल पर ग्रहण किया है। अतः यह विष्णु की पत्नी है। यह बहुत ही सुन्दरी है तथा सदा युवती रहती है। इनकी पूजा अनेक अवसरों पर की जाती है। खास कर दीपावली के दिन इनकी विशेष पूजा होती है। ब्रह्मवैवर्तपुराण, देवीपुराण, स्कन्दपुराण तथा अन्य पुराणों में लक्ष्मी के माहात्म्य की कथाएं मिलती हैं। लक्ष्मी के कमला, पद्मा, श्री, इन्दिरा, रमा, भार्गवी तथा क्षीरोदतनया आदि नाम प्रसिद्ध हैं।

सरस्वती देवी भी प्राचीन-काल से पूजित हो रही हैं। पुराण के अनुसार सरस्वती ब्रह्मा की पुत्री हैं और कहीं-कहीं उन्हें ब्रह्मा की पत्नी कही गयी हैं। ब्राह्मणग्रन्थों के अनुसार सरस्वती को वाग्देवी माना गया हैं। वाजसनेयी संहिता के के अनुसार सरस्वती देवी ने इन्द्र को शक्ति प्रदान की थी। महाभारत के अनुसार यह दक्ष प्रजापति की पुत्री हैं जिनके हाथ में वीणा और पुस्तक हैं। हंस इनका वाहन है।

सरस्वती की उपासना हिन्दू बौद्ध जैन तथा अन्य मतावलम्बियों के द्वारा भी की जाती है। चीन में "नील सरस्वती" के रूप में और तिब्बत में वीणा सरस्वती के रूप में इनकी पूजा होती है।

सत्यलक्ष्मी, वीरलक्ष्मी, धनलक्ष्मी, धान्यलक्ष्मी, राजलक्ष्मी, मोक्षलक्ष्मी, विद्यालक्ष्मी, धैर्यलक्ष्मी और सौभाग्यलक्ष्मी ये नव (९) लक्ष्मियां सरस्वती की सहचरी हैं। मारवार में मयूर को सरस्वती का वाहन माना जाता है।

बौद्धों की वागीश्वरी 'सिंहवाहिनी' है। जैनों ने सरस्वती को विद्या, बुद्धि और विवेक की अधिष्ठात्री देवी माना है।

इस प्रकार लक्ष्मी और सरस्वती का माहात्म्य सर्वविदित है। लक्ष्मी धन देती है और सरस्वती विद्या देती है। लक्ष्मी और सरस्वती में परस्पर द्वेष है ऐसा भी विद्वान् लोग मानते हैं, लेकिन दोनों एक ही आद्या शक्ति के रूप हैं ऐसा समझना चाहिए।

"लक्ष्मीसरस्वत्योर्विवादः" की रचना तीर्थराज प्रयाग में रामानन्द त्रिपाठी ने 1740 सम्बत् के आश्विन कृष्ण द्वादशी को की थी। यह एक लघु काव्य है जिसमें ६० श्लोक हैं। इस काव्य में मन्दाक्रान्ता, शिखरिणी, पृथ्वी, हरिणी, वसन्त-तिलका तथा शार्दूलविक्रीडित छन्दों का प्रयोग हुआ है। इसमें लक्ष्मी और सरस्वती का परस्पर वार्तालाप है। इसमें दोनों के कुल पर कटाक्ष किया गया है। दोनों के चरित्र पर परस्पर आरोप है और दोनों ही दोनों के पति को भी धिक्कारती हैं। लक्ष्मी सरस्वती को बर्बरा, वाचाला, मुखरा तथा अन्यान्य अपमानजनक शब्द कहती हैं और सरस्वती लक्ष्मी को कुलटा, अधमा, घमण्डी तथा अन्य दुःशब्द कहती है।

इस ग्रन्थ के लेखक कवि रामानन्द त्रिपाठी सरयूपारीण ब्राह्मण थे। उनके पिता का नाम मधुकर था।

मैंने आयुष्मान् श्रीमहिनन्दन सिंह जी से इस ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रतिलिपि प्राप्त की थी, जो उनके पूर्वज बाबू

व्रजनन्दनसिंह के द्वारा संगृहीत की गयी थी। इस ग्रन्थ की दूसरी प्रति श्री श्यामानन्द झा के पास से मिली थी। इस ग्रन्थ की एक प्रति श्री रणवीर अनुसन्धान पुस्तकालय, जम्मू में सुरक्षित है जिसका भी मैंने उपयोग किया है।

इस लघु काव्य में व्याकरण की दृष्टि से कुछ सन्दिग्ध प्रयोग भी हुए हैं, परन्तु काव्य का सरस प्रवाह अतीव चित्ताकर्षक है।

मैंने इस ग्रन्थ के संशोधनादि में डा० श्रीमुरलीधर पाण्डेय, प० श्री विहारीलाल शास्त्री, पं० श्री कुमुदनाथ मिश्र, प० श्री वैद्यनाथ झा तथा अन्य मित्रों की सहायता ली है। अतः वे सब हार्दिक धन्यवाद के पात्र हैं।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन में शुभकामना व्यक्त करनेवालों में प्रमुखरूप से मेरे शोधच्छात्र हैं। मेरे मार्गदर्शन में पी एच. डी. उपाधि प्राप्त शोध विद्वान् डा० धनीराम शास्त्री, डा० अनुराधा डोगरा, डा० कमलेश दीक्षित, डा० द्वारकानाथ शास्त्री; डा० बाबूराम शर्मा तथा डा० ललिता खोसला (डी. लिट शोधच्छात्रा) प्रभृति ने विशेष रूप से शुभकामना व्यक्त की है।

मेरे मार्गदर्शन में शोधकार्य करते हुए प० श्रीमान् शान्ति प्रकाश शास्त्री, प० प्रियतमदत्त शास्त्री, प० राजेन्द्रप्रसाद शास्त्री, प० लोकीनन्द शास्त्री, प० श्री शिवकुमार शास्त्री,

प० श्री रतनचन्द्र शास्त्री, प्रो० श्री मिथिलेश कमार शर्मा, प० श्री राकेश शर्मा. प० श्री डिम्भनाथ मिश्र, प० श्रीबदरी-नाथ शर्मा, श्रीमती सन्तोष गुप्ता, साध्वी सरिताजी महाराज, प० श्री गौरीदत्त शर्मा, प० श्री सुभाषशर्मा, पं० श्री गोपाल झा सुश्री स्नेह गुप्ता प० सत्यकीर्ति शास्त्री तथा अन्य विद्वान् भी इस कार्य में शुभचिन्तक रहे हैं।

इस कार्य के प्रेरणास्रोत धर्मपत्नी श्रीमती विभा झा विशेष रूप से धन्यवाद के पात्र हैं। मेरे चारों पुत्र आयुष्मान् श्रीविद्यारमण झा, श्री किशोरीरमण झा श्री गिरिजारमण झा तथा श्रीमथुरा रमण झा भी आर्शीर्वाद के पात्र हैं, जो ग्रन्थ लिखते समय शान्त रहते थे।

मेरे अग्रज पं० श्री गौरीरमण झा तथा डा० शचीरमण झा और अनुज डा० श्री सतीरमण झा की भी शुभकामनाएं सतत् मेरे साथ रहती हैं। वहन श्रीमती चण्डिका देवी और श्रीमती पीताम्वरी देवी की शुभकामना भी प्राप्त है।

इस ग्रन्थ को मैं अपनी जननी परम श्रद्धेया श्रीमती सरस्वती देवी (प्रसिद्ध श्रीमती सरोजा देवी) के चरण कमलों में समर्पित करते हुए अपार हर्ष का अनुभव कर रहा हूं।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन में आर्थिक सहायता १०८ श्रीभगवान् वाला जी, तिरूपति की कृपा से तिरूमला तिरूपति देवस्थानम्, तिरूपति आन्ध्र प्रदेश से मिली है। अतः मैं भगवान् बालाजी का प्रणाम् करके उस संस्था का पूर्णरूप से आभार ज्ञापन

करता हूं। और विशेष रूप से के० सुब्बा राव का धन्यवाद ज्ञापन करता हू।

लक्ष्मी और सरस्वती जी के माहात्म्य के विषय में मुझ अल्पज्ञ से जो त्रुटियां हुई हैं, उसे वे दोनों ही देवियां क्षमा करके मुझे अपनी-अपनी कृपा के पात्र बना लेंगी; ऐसा विश्वास है।

सुधीजन त्रुटियों को सुधार कर मुझे अनुगृहीत करेंगे, ऐसी आशा है।

६-१२-१९८४ विदुषामनुचर :
जम्मू तवी उमारमण झा

लक्ष्मीसरस्वत्योर्विवादः

(लक्ष्मी और सरस्वती में विवाद)

श्रीगणेशाय नमः ।

ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रमुख्यत्रिदशपरिवृढश्रेणिभास्वत्सुधर्मा,
सिन्धोरावर्तसान्द्रध्वनिरिव विलसद्गद्यपद्यप्रवाहः ।
नानालङ्कारछन्दोगुणगरिमगुणग्रामविश्रामबन्धुः,
श्रीभारत्योर्विवादः कलयतुसततं शर्म निर्मत्सराणाम्
॥१॥

ब्रह्मा, इन्द्र तथा विष्णु आदि प्रमुख देवताओं से युक्त देवसभा सुधर्मा के समान तथा समुद्र की भंवर की गम्भीर ध्वनि के समान गद्य-पद्यप्रवाह से सुशोभित एवं अनेक अलङ्कार छन्द तथा गुणों के गरिमारूप गुणसमूह का विश्रामस्थल यह "लक्ष्मी-सरस्वती-विवाद" नामक ग्रन्थ द्वेषरहित मानवों का कल्याण करें । यहां स्रग्धरा छन्द में अनुप्रास तथा उपमालङ्कार के द्वारा चमत्कार दिखाया गया है ॥१॥

पहले लक्ष्मी अपना गुणगान करती है ।

लक्ष्मी :—

यत्राहं तत्र भोगा: कति कति
न पुन: पूर्त्तखातप्रयोगा:,
संयोगास्सत्सुखानां विलयमपि
तथा यान्ति ये विप्रयोगा: ।
कीर्तिस्तेषां हि येषां भवनमधिगता
ते गुणानां निधानं,
वाचाले ! वर्वरे त्वं कथमिह रमया
स्पर्धसे वाणि ! सार्धम् ॥२॥

लक्ष्मी कहती है कि जहां मैं हूं वहीं पर सुख भोग होते हैं और कितने ही प्रकार के यज्ञादि का प्रयोग होता है। वहीं अच्छे सुखों का मिश्रण होता है तथा सभी दु:ख दूर हो जाते हैं। जिनके घरों में मैं पहुंच जाती हूं उनकी ही कीर्ति है और वे ही गुणों के खजाना समझे जाते हैं। अरी वक वक करने वाली वाचाले ! सरस्वति ! तुम किस प्रकार मुझ रमा के साथ स्पर्धा कर सकती हो ? अर्थात् तुम मेरे समान कभी नहीं हो सकती ॥२॥

इस पर सरस्वती का जवाब इस प्रकार है—

सरस्वती—

आसे यस्याहमास्ये[1] तमिह निजगुणैः

पूरयित्वा नृपाणाम्,

पूज्यं पीयूषशुभ्रैः प्रचुरतरल-

सद्गद्यपद्यैः करोमि ।

त्वं तावद्यस्य कस्याप्यपि खलु

भवनं भावयित्वा विधत्से,

बुद्धिभ्रंशं तदेतद्वद वत कमले !

चञ्चले मुञ्च गर्वम् ।।३।।

जिसके मुंह में मैं निवास करती हूं उसे अमृतमय, शुभ्र, एवं अत्यधिक सुन्दर गद्य पद्य के निर्माण के द्वारा राजा का पूज्य बनाती हूं । लेकिन तुम जिस किसी के घर जाती हो उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है । इसलिए हे चञ्चले ! कमले ! तुम व्यर्थ के गर्व को छोड़ दो ।।३।।

इस पर लक्ष्मी जबाव देती है ।

लक्ष्मी—

तातो रत्नाकरो मे सकलगुणनिधिः

सद्गुणग्रामघोषै-

---

1. आस्ये यस्याहमासे—पाठा क

मर्यादामार्यधुर्यास्त्रिभुवनभवने
यस्य विख्यापयन्ति ।
भ्राता भर्गोत्तमाङ्गे निवसति मुखरे
भारति ! भ्रान्तचित्ते !
हीना पित्रादिभिस्त्वं निजगुणकथनै
र्देवि ! गर्वं जहीहि ॥४॥

लक्ष्मी जी कहती है कि मेरे पिता समस्त गुणों की खान रत्नाकर (समुन्द्र) हैं जिनके गुणसमूह का उद्घोष त्रिभुवन-रूपी भवन में अर्थात् तीनों लोकों में सभी विद्वान् करते हैं। मेरे भाई चन्द्रमा शिवजी के मस्तक पर विराजमान हैं। किन्तु अरी भ्रान्तचित्तवाली सरस्वति ! तुम पिता आदि से हीन अनाथ हो। तुम अपने गुणों का बखान करके गर्व करना छोड़ो ॥४॥

अब सरस्वती जी कहती हैं।

सरस्वती—

भर्त्ता मे विश्वकर्त्ता सकलसुरगुरुः
पारमेष्ठ्यं यदीयं,
विख्यातं धाम योऽसौ त्रिभुवनपति-
भिर्पूज्यपादारविन्दः ।

तस्याहं पट्टराज्ञी निखिल गुणगणै-

गीररिति ख्याततत्वा-

तस्यास्ते चञ्चलाया: कथमिह

कमले ! मामकीना तुलास्ते ।।५।।

सरस्वती जी कहती है कि मैं अनाथ नहीं हूं । मेरे स्वामी जगत् के स्रष्टा, तथा समस्त देवताओं के गुरू हैं। जिनका पारमेष्ठय धाम प्रसिद्ध है एवं जिनके चरणकमल त्रिभुवन के स्वामी (विष्णु) के द्वारा पूज्य है, मैं उनकी पट्टरानी हूं । समस्त गुणसमूह से युक्त होने के कारण वाणी इस नाम से प्रसिद्ध हूं। इसलिए हे लक्ष्मि ! मेरे साथ तुझ चञ्चला की तुलना कैसे हो सकती है ? ।।५।।

ऐसा सुनने पर लक्ष्मी जी पुनः कहती हैं –

लक्ष्मी:—

अस्मत्प्राणप्रियस्य प्रलयजलमधि-

प्राप्तनिद्रस्य नूनं,

नाभ्यब्जे चाब्जयोनेर्जनिरिति

तदपि श्लाघसे वाणि कान्तम् ।

वेदाभ्यासोरुदु:खप्रकटितविवृति-

स्तस्य राज्ञीति गर्वम्,

सर्वं विज्ञातमास्ते विदितमपि च ते
वाणि मौखर्यमार्य्यैः ।।६।।

लक्ष्मी जी कहती है अरी सरस्वति ! तुम उस ब्रह्मा की प्रशंसा कर रही हो जो निश्चय ही प्रलयजल के मध्य में निद्रा को प्राप्त हमारे प्राणप्रिय के नाभि से निकले हुए कमल से उत्पन्न हैं और जिसका निरन्तर वेदाभ्यास के कारण दूःखातिशय स्पष्ट है। उनकी रानी होने का गर्व कर रही हो ? अरी भारति ! आर्य्यलोग तुम्हारी वाचालता को जानते हैं। अतः व्यर्थ गर्व करना ठीक नहीं है ।।६।।

इस पर सरस्वती जी का उत्तर इस प्रकार है—

सरस्वती—

त्वद्भर्ता मत्स्यकूर्माद्यवतरणमगात्
स्वां प्रियां हारयित्वा,
जित्वा पौलस्त्यमुग्रं रणभुवि-
कृपणोऽजीजहच्चापिभार्यां ।
पारस्त्रैणाप्तभोगः पशुपकुलजनि-
र्मातुलस्यापि हन्ता,
तत्कान्ता त्वं कदर्ये तदिह न कमले
भार्यया लज्जितव्यम् ।।७।।

तुम्हारे पति अपनी प्रिया (पृथ्वी को) हारकर मत्स्य, कूर्म आदि अवतार लिये। भीषण युद्ध भूमि में रावण को जीतकर भी अपनी पत्नी को पुनः त्याग दिया। तुम्हारा पति (कृष्ण) परस्त्री से प्राप्त भोग करने वाला, गोपकुल में उत्पन्न तथा अपने मामा का हन्ता है। अरी लक्ष्मि! तुम उसकी पत्नी हो (अतः) इस पर तुम्हें क्या लज्जा नहीं करनी चाहिए? अर्थात लज्जित होकर तुम अपना सिर नीचा करो ॥७॥

ऐसा सुनने पर लक्ष्मी ने कहा—

लक्ष्मी—

रे वाचाले! सरस्वत्यखिलसुरगुरु
विश्वभर्त्तास्ति भर्ता,
चेदस्माकं तदीयां गतिमिह गदितुं
ते वचो नास्ति शक्तम्[1]
तत्तो भूत्वापि भर्ता नवमृगवपुषा
ऽरीरमत्त्वां कदर्या,
मर्यादां कल्पयन्ती किमिति विवदसे-
मत्समक्षं स्वपक्षम् ॥८॥

---

1. शक्यम् —पाठा०

हे वाचाले ! सरस्वति ! यदि मेरे पति सब देवताओं में श्रेष्ठ और विश्व के स्वामी हैं तो फिर मेरे सामने उनकी गति को कहने के लिए तुम्हारे पास कोई शब्द नहीं है। उस (मेरे पति) से उत्पन्न होकर भी तुम्हारे पति ने नया मृगशरीर धारण कर तुझ कदर्या के साथ रमण किया था। तुम अपने पक्ष की बड़ाइ क्यों कर रही हो ? अर्थात् तुम्हारा सब बकवास है ॥८॥

इस पर सरस्वती झट कहने लगती है—

सरस्वती—

भर्त्रैकेन हि भुज्यते यदि वधूः पित्रादिभावैर्निजैः,
का हानिश्चपले तदास्ति कमले भोक्ता पुनः केवलः।
स्वर्भूभूतलवासिनः खलु जनास्तिर्यक्समेताः पुन-
र्भुंजन्ते कुलटाधमामिव सदा त्वां तत्र नो लज्जसे ॥९॥

एक ही पति के द्वारा यदि वधू पित्रादि भाव से भोगी जाती है तो अरी चपले ! उसमें क्या दोष है ? आखिर भोग करने वाला पुरुष तो एक ही है, भले ही उस पुरुष का भाव अलग हो। लेकिन तुम अधमा कुलटा का भोग तो स्वर्ग, पृथ्वी तथा अन्तरिक्षलोक के निवासी तथा तिर्यक्योनि वाले भी करते रहते हैं। क्या तुझे लज्जा नहीं आती है ? तुम चुप रहो ॥९॥

ऐसा सुनकर लक्ष्मी झट उत्तर देती है—

लक्ष्मी—

मा गर्वं कुरु वर्वरे बहुगिरा किं त्वं वृथा वल्गसे
यत्राहं तमनुव्रजन्ति सुधियस्तत्रापि ये तावका: ।
तद्वक्त्रे वसतिं विधाय धनिकश्लाघासु बद्धादरा:
वल्गन्तीव विभाव्यसे सुकृतिभिस्त्वं वन्दिभार्या इव
॥१०॥

अरी वर्वरे ! अभिमान मत करो । तुम व्यर्थ की वकवास क्यों कर रही हो ? जिसके पास मैं रहती हूँ वहां पर तुम्हारे विद्वान् लोग भी पहुंचते हैं । अर्थात् तुम्हारे आप्त लोग भी हमारे धनवानों को प्रशंसा करते हैं । तुम विद्वानों के मुंह में रहकर धनवानों की प्रशंसा में तल्लीन रहती हो । अत: सज्जन लोग तुम्हे वन्दी की पत्नी की तरह समझते हैं । तुम व्यर्थ ही वहुत बोलती हो । यहां शार्दूल विक्रीडित छन्द में उत्प्रेक्षा अलंकार का समावेश है ।।१०।।

अव सरस्वती इस प्रकार से प्रत्युत्तर देती है—

सरस्वती—

रे रे रे चपले शृणुष्व कमले गर्वो न कार्यस्त्वया,
त्वद्भ्राज: खलु मद्यमांसगणिकाद्यूतादिभिर्भ्रंशिता: ।

ये येऽस्मत्करुणाकटाक्षकलितास्ते ते जना मामका:
सद्गद्यामृतपद्यपानपटवस्ते त्वां तृणीकुर्वते ॥११॥

अरी चञ्चले ! लक्ष्मि ! तुम गर्व मत करो । तुम्हारे उपासक निश्चय ही मद्य, मांस, गणिकागमन तथा द्यूत आदि से भ्रष्ट हो जाते हैं। जो जो मेरी दयादृष्टि के पात्र हैं, वे मेरे लोग अच्छे गद्य-पद्य रूपी अमृतपान में चतुर तुझे तिनके के समान मानते हैं । अतः तुम मेरी वरावरी मत करो ॥११॥

इस पर लक्ष्मी कहती है—

लक्ष्मी—

अलं न वद वर्वरे मदनुभावबोधाधमे,
मदीय वशवर्तिनी त्वमिह वर्वरे किंकरी ॥
असद्गुणविकत्थनैर्वत सदर्थसारोज्झिता,
सरस्वति ! सरस्वती न खलु तावकी शोभते ॥१२॥

अरी वर्वरे ! अब अधिक मत बोलो । तुम मेरी वैभव-शक्ति को नहीं जान सकती हो। तुम मेरे वश में रहने वाली नौकरानी हो। अच्छे गुणों से रहित होकर भी तुम आत्म प्रशंसा करती हो, यह तुमको शोभा नहीं देती है । तुम

सारहीन बात बोलती हो। यहाँ पृथ्वी छन्द में अनुप्रास की छटा है।

अब सरस्वती इस प्रकार से प्रत्युत्तर देती है—

सरस्वती—

जडाधम-दुरोदर-व्यसनलुब्धतन्द्रालस-
नृशंसमुखमानुषप्रकरकिङ्करी या स्वयम्।
वृथा गुणविकत्थनैर्विरम नीचलोकाश्रये
न लक्ष्मि ! तव लक्षणैः कमपि[1] लक्षये सुस्थिरम्
॥१३॥

अरी जड़, नीच, द्यूतरूपी व्यसन से युक्त, तथा क्रूर-व्यक्तियों की दासी तुम स्वयं हो। तुम नीच लोगों पर आश्रित रहती हो। तुम व्यर्थ का गुणगान मत करो। हे लक्ष्मि ! तुम्हारे लक्षण से युक्त कोई भी सुस्थिर नहीं रहता है ॥१३॥

इस पर लक्ष्मी बोलती है—

लक्ष्मी—

अरे न कुरु वर्वरे ! ध्रुवमखर्वगर्वं वृथा,

---

1. किमपि—पाठान्तरम्

त्वदीयवशवर्तिनोऽप्यपि मदीयलिप्सोत्सुकाः ।
प्रयासि बहुभाषिणी त्वमिह यत्र नानाविधम्
रमोत्सवमहोर्जितं द्रविणकोशमुन्मीलति ॥१४॥

अरी बर्बरे ! तुम निश्चय ही अधिक व्यर्थ गर्व मत करो। तुम्हारे वश में रहने वाला व्यक्ति भी मेरी लिप्सा के उत्सुक रहते हैं। जहाँ मेरे द्वारा कोश खोला जाता है और महोत्सव होता है वहां तुम जाती हो ॥१४॥

सरस्वती का जवाब पुनः इस प्रकार है—

सरस्वती—

मनीषिभिरदूषणैर्गुणविभूषणैरर्जितम्,
जगज्जनविसर्जितं यदिह वर्धते नित्यशः ।
प्रयाति कतिचिद्दिनैस्तव हि लक्ष्मि कोशं क्षयम् ।
न याति मम शारदं किमपि कोशमेतत्क्षयम् ॥१५॥

दोष रहित विद्वानों के द्वारा तथा गुणरूप विभूषणों के द्वारा अर्जित, जगत् के लोगों के द्वारा परित्यक्त मेरा यह शारद कोश नित्य बढ़ता है। अरी लक्ष्मि ! तुम्हारे कोश का क्षय तो कुछ ही दिनों में हो जाता है किन्तु मेरा शारद कोश थोड़ा सा भी क्षीण नहीं होता है ॥१५॥

लक्ष्मी पुनः बोल उठती है—

लक्ष्मी—

मया विरहितः पुमान् व्रजति घोरदुःखं ध्रुवम्
मया खलु विलोकितः सुखमनुत्तमं गच्छति ।
न तत्र गणना तव प्रकृतिवर्वरे शारदे,
समस्तगुणशालिनीं कथय मां वरीवर्तसे ॥१६॥

निश्चय ही मुझ से हीन व्यक्ति घोरदुःख को प्राप्त करता है किन्तु जो व्यक्ति मेरी नजर के सामने आता है, वह उत्तम सुखों को प्राप्त करता है । अरी वाचाले ! सरस्वति ! तुम्हारी गणना वहां नहीं होती है। अरी जन्म जात वाचाले ! सरस्वति ! समस्त गुणों वाली मेरी वरावरी तुम भला कैसे कर सकती हो ॥१६॥

इस पर सरस्वती कहती हैं —

.सरस्वती—

अये प्रकृतिचञ्चले ! किमतिगर्वमालम्बसे,
रमेऽप्यथ न लज्जसे निजवृथाकथाजल्पनैः ।
मदीयगुणजल्पकाः सपदि मामकीना जना-
स्तवाल्पमपि नादरं मम रसात्मकाः कुर्वते ॥१७॥

हे प्रकृति चञ्चले ! लक्ष्मि ! तुम क्यों अत्यधिक गर्व कर रही हो ? व्यर्थ ही अपनी प्रशंसा की गाथा कह कर लज्जित नहीं होती हो ? मेरे गुणों के तत्कालवक्ता मेरे रसिकजन तुम्हारा तनिक भी आदर नहीं करते हैं ॥१७॥

अब लक्ष्मी कहती है—

लक्ष्मी—

असूयासन्दर्भैस्तिरयसि गृणन्ती निजकथां
वृथा वद्धस्पर्द्धे तदपि मम तावन्न तु तुला ।
मया हीनो दीनस्तव गुणवितानैकवसतिः
कथं जीवो जीवेत्प्रकृतिमुखरे भारति वद ॥१८॥

गुणों में दोषारोपण के सन्दर्भों के द्वारा अपनी कथा को कहती हुई, तुम अपनी वास्तविकता को छिपाती हो । व्यर्थ ही तुम स्पर्धा कर हरी हो । तुम्हारी तुलना मेरे साथ नहीं हो सकती है । अरी वाचाल सरस्वति ! बोलो कि कैसे मुझ से हीन दीन तुम्हारे गुण से युक्त जन जी सकता है ? यहां शिखरिणी छन्द में अपह्नुति अलंकार है ॥१८॥

अब सरस्वती कहती है—

सरस्वती---

अनिष्टं वाभीष्टं यदिह लिखितं भालपटले,

जगद्धात्रा धात्रा प्रति फलति सर्वं हि जगताम् ।
इदं रामानंदैर्निगदितमरे मार्मिकगिरा,
सुखं वा दुःखं वा कलयितुमलं त्व न कमले ।।१६।।

जगत्स्रष्टा ब्रह्मा ने लोगों के भालपटल पर जो अनिष्ट अथवा अभीष्ट लिख दिया है, वही इस संसार में प्रतिफलित होता है। अरी लक्ष्मि ! रामानन्द ने अपनी मार्मिकवाणी के द्वारा कहा है कि तुम सुख वा दुःख को देने में समर्थ नहीं हो ।।१९।।

इस पर लक्ष्मी इस प्रकार उत्तर देती है —

लक्ष्मी---

ध्रुवं ख्यातस्तातः सपदि मम रत्नाकरपदैः
मया प्राज्यं राज्यं कलयति स वास्तोष्पतिरपि ।
ममाधिक्यं मुग्धे कलय मुखरे भारति पुनः
मया वध्वा विष्णुस्त्रिभुवनपतित्वे समुचितः ।।२०।।

मेरे पिता निश्चय ही रत्नाकर के नाम से प्रसिद्ध हैं। मेरे द्वारा बढ़ाये गये राज्य को इन्द्र भी समृद्ध करते हैं। अरी मूढ़ वाचाल सरस्वति ! मेरे सामर्थ्य को तुम समझो। विष्णु भी मुझ जैसी पत्नी को पाकर ही "त्रिभुवनपति"

कहलाते हैं। यहां शिखरिणी छन्द में अतिशयोक्ति अलंकार है ॥२०॥

सरस्वती जी का जवाब इस प्रकार है --

ममैव व्यासाद्याः कतिकति मुनीन्द्रा न विदिताः
पदव्यासीन्मत्तः सुरदनुजगुर्वोश्च महती ।
मया वाण्या बाले ! जडमपि भवत्या सह पुन-
र्जगत्सर्वं तावद्भवति कमले चेतनमिदम् ॥२१॥

मेरी कृपा से न जाने कितने ही व्यास आदि मुनीन्द्र हो गये हैं मेरी ही कृपा से देवो के गुरु वृहस्पति को देवगुरु की पदवी तथा शुक्राचार्य को दैत्यगुरु की महत्वपूर्ण पदवी मिली है। मेरी शक्ति से ही तुम्हारे सहित यह सारा जड़ जगत् चेतन कहलाता है। अरी मूढ लक्ष्मि ! यह मेरो ही महिमा है, तुम्हारी नहीं ॥२१॥

इस पर लक्ष्मी कहती है--

अरे रे दुर्वाणि ! त्वमसि मम वाग्दूषणकरी,
न वा भेकी केकाकलकलनमेषा गणयति ।
अजानन्ती निन्दस्यपि वत सरस्वत्यपि च मां,
तवेयं दुर्मेधा मम भवति खेदाय मुखरे ॥२२॥

हे दुर्वाणि ! हे सरस्वति ! तुम व्यर्थ ही मेरी वाणी को दूषित कर रही हो। यह दुःख की बात है कि मेढ़की मयूर की सुन्दर वाणी को महत्व नहीं देती है। उसी तरह तुम मुझे न जानती हुई मेरी निन्दा करती हो। तुम्हारो यह दुर्बुद्धि मुझे केवल कष्ट ही पहुंचाती है ॥२२॥

सरस्वती जी लक्ष्मी जी से कहती हैं -

अरे लोले लक्ष्मि ! त्वमसि गणिका कापि जगतां
ध्रुवं त्यक्त्वा[1] निःस्वान् सपदि धनिनस्त्वं मृगयसे ।
समाहं लोकेऽस्मिन् धनिकमधनं काव्यसुधया
समाधाय स्वान्ते मुदमपि दधामि त्रिजगताम् ॥२३॥

हे चञ्चले ! लक्ष्मि ! तुम संसार की मानी हुई गणिका हो जो कि संसार में धनहीन व्यक्तियों को छोड़ कर धनी लोगों को ढूढ़ती फिरती हो। लेकिन मैं एकसमान निर्धन तथा धनी को काव्य रूपी अमृत से युक्त करके अन्तःकरण तक प्रसन्नता की लहरें पैदा करती हूं ॥२३॥

अब लक्ष्मी कहती है—

---

1. यदुज्झित्वा—पाठान्तर।

वतालं वाग्जालैः परगुणविबोधेप्यविदुषी
प्रकृत्यैव प्रायस्त्वमसि विदिता वर्बरमुखी ।
अरे भारत्यज्ञे परगुणमहद्दूषणकरि !
त्वया सार्धं स्पर्धाप्यथ मम हि लज्जाञ्जनयति
॥२४॥

हे सरस्वति ! तुम्हारा वाग्जाल (ज्यादा बोलना) वेकार है। तुम दूसरे के गुणों को जानकर भी विदुषी नहीं हो। स्वभाव से ही तुम प्राय: प्रलापिनी हो। दूसरे के गुणों को दूषित करने वाली हे मूर्ख सरस्वति ! तुम्हारे साथ तो स्पर्द्धा करना भी मेरे लिए लज्जाजनक है ॥२४॥

अब सरस्वती कहती है :—

सरस्वती :—

अलमलमलं बह्वालापैर्वृथा किमु वल्गसे,
त्वमिह विदिता विज्ञैर्लोलेत्यसत्यमपि भाषसे ।
ध्रुवमहो मत्वा मन्ये गतिं तव चंचला-
मुरसि भवतीमेवाधत्ते रमे रमणस्तव ॥२५॥

अधिक बोलना वेकार है। क्यों व्यर्थ डींग हांक रही हो ? तुम विद्वानों के द्वारा "चञ्चला" कही गयो हो।

इसलिए असत्य भी तुम बोलती हो । तुम्हारी इस चञ्चल-गति को जानकर तुम्हारे पति विष्णु ने तुम्हें शक करके अपने वक्षस्थल पर धारण कर लिया है ऐसा मैं समझती हूं। यहां हरिणी छन्द में काव्यलिङ्ग एवं उत्प्रेक्षा अलङ्कार प्रतीत होता है ॥२५॥

लक्ष्मी जी इस पर कहती है :—

लक्ष्मी :--

विदितविदितांस्तव दोषानवेक्ष्यविचक्षण-
स्तव पतिरपि प्रायो दृष्ट्वा विभाषणवर्वराम् ।
अयमयमहो[1] मत्वा वाणि ध्रुवं कलहप्रियाम्,
स्वयमवहितो लोकेभ्यस्त्वां विभज्य विधिर्ददौ
॥२६॥

हे सरस्वति ! सर्वविदित तुम्हारे दोषों को देखकर चतुर तुम्हारे पति ब्रह्मा ने भी तुम्हें बहु भाषिणी, प्रलापिनी, तथा कलहप्रिया मान कर निश्चय ही सावधानी पूर्वक तुम्हे लोगों के बीच बांट कर दे दिया । यहां हरिणी छन्द में छेकानुप्रास का चमत्कार है ॥२६॥

---

1. अहमहमहो—पाठान्तर ।

इस पर सरस्वती झट कहती है—

सरस्वती :--

किमिह भजसे गर्वं लोले मया सह सर्वतस्तव
मम गुणग्रामे लक्ष्मि ! ध्रुवं महदन्तरम् ।
त्वमिह तनुषे कामक्रोधप्रलोभमदादिकं,
ध्रुवमहमहो ब्रह्मानन्द-प्रमोदपरंपराम् ॥२७॥

अरी चञ्चले ! लक्ष्मि ! मेरे समक्ष इतना गर्व मत करो। तुम्हारे एवं मेरे गुण समूह में महान् अन्तर है । तुम काम-क्रोध-लोभ-मोह-मद आदि का प्रसार करती हो और मैं निश्चय ही ब्रह्मानन्द तुल्य हर्ष को परम्परा को फैलाती हूं ॥२७॥

इस पर लक्ष्मी जी कहती हैं :—

लक्ष्मी :--

अमरललनालङ्काराणामलंकृतिभूरहं
सकलसुमनोवृन्दे सुज्ञातकल्पलतास्म्यहम् ।
नरपतिकुले संपद्रूपा मया सह निर्गुणे
भजसि मुखरे वाणि ! स्पर्द्धामहो नहि लज्जसे
॥२८॥

हे सरस्वति ! मैं देवाङ्गनाओं के आभूषणों की शोभा की जननी हूं। अर्थात् मेरी ही कृपा से देवाङ्गनाओं की शोभा होती है। विद्वान् लोग जानते हैं कि मैं ही कल्पलता हूं। राजकुल में मैं ही "राज्यश्री" हूं । अतः हे वाणि मेरे साथ स्पर्द्धा करते हुए तुम्हे लज्जा नहीं हो रही है ? तुम चुप रहो ॥२८॥

इस पर सरस्वती का जवाव ऐसा है :—

सरस्वती :--

कतिपयदिनैर्भ्रातेव त्वं क्षयं यदि गम्यसे
किमिह कमले लोले तत्र गुणौघविकत्थनैः ।
मम हि विदिता किं वा लोकेन वृद्धिरहर्दिवं
विरम विरम प्रायोवादच्छलादलमिन्दिरे ।।२९।।

हे कमले ! अगर तुम भी अपने भाई चन्द्रमा की ही तरह कुछ ही दिनों में क्षय को प्राप्त करती हो तो चञ्चला होकर भी अपने गुणों की प्रशंसा क्यों करती हो ? संसार में प्रतिदिन होने वाली मेरी वृद्धि क्या सर्व ज्ञात नहीं है ? तुम अधिक मत बोलो ॥२९॥

इस पर लक्ष्मी कहती है—

लक्ष्मी :--

सहजभवनं शुभ्रं भोज्यं कराम्बुजचालनो-
च्छ्रुतकलशश्रेणिनिर्गतगजाम्बु-निमज्जनम् ।
मुखरवदने वाणि ! प्रायस्तु या समुपास्यते
सुरनरमुखैस्तस्याः स्पर्धा कथं तव युज्यते ॥३०॥

मेरा स्वाभाविक भवन स्वच्छ तथा उपभोग के योग्य है। मेरे करकमल के चलाने से जा कलकल करती हुई धन की नदी निकती है, उसमें बड़े-बड़े गजराज भी डूब जाते हैं । अरी मुखरे ! देवपुरुषों के प्रमुखों के द्वारा मेरी उपासना की जाती है । इस तरह मुझ जैसी के साथ तुम्हारा स्पर्धाकरना उचित नहीं है ॥३०॥

इस पर सरस्वती जो कहती हैं :-

सरस्वती :--

अहह गहनं यन्मे कान्तासनं भवनं हि ते,
निवससि कथं त्वं मे सद्मन्यनुपमहासने ।
तव जडजनैर्लज्जा नैवोदयत्यसि कामुकी,
भजसि भवनं यत्त्वं लोले ! परैः परिसेवितम्
॥३१॥

यह वड़े ही आश्चर्य की वात है कि मेरे पति का आसन (कमल) ही तुम्हारा घर है। अरी अनुपम हंसी उड़ाने वाली ! तुम तो मेरे घर में रहती हो। अरी कामातुरा लक्ष्मि ! मूढ़ लोगों के साथ रहने में तुम्हे क्या लज्जा उत्पन्न नहीं होती है ? क्योंकि तुम दूसरों के द्वारा उपभुक्त भवन का भोग करती हो ॥३१॥

इस पर लक्ष्मी जी कहती हैं :—

लक्ष्मी :--

परमपिशुने ! पैशून्येन प्रियेतरभाषिणि !
प्रकृतिमुखरे। विभ्रंशः कथं तव भारति !
उदरकमलादप्युत्पन्नः[1] प्रियस्य ममात्मभू
भवति तनयो यो मे सोऽयं मतस्तव कामुकः ॥३२॥

अत्यन्त चुगलखोर हे सरस्वति ! चुगलखोरी के कारण कटु बोलने वाली हे प्रकृति मुखरे ! हे भारति ! तुम्हारी बुद्धि क्यों मारी गयी है ? क्योंकि मेरे प्रिय की नाभि से उत्पन्न कमल से उत्पन्न मेरा पुत्र जो ब्रह्मा हैं, वही तेरा कामुक पति है। यहां हरिणी छन्द में एकावली अलङ्कार है ॥३२॥

———————————

1. दस्त्युत्पन्नः—पाठा०।

सरस्वती का प्रत्युत्तर ऐसा है :—

सरस्वती :–

रे रे लक्ष्मि ! प्रकृतिचपले ! मुञ्च मुञ्चात्मगर्वं
सर्वं जाने वत विषयिणः कामुकास्त्वां भजन्ति ।
ये तु ज्ञानामृतसुखरसोदञ्चदम्भोधिमग्ना-
स्तेऽमी हालाहलमिव जना दूरतस्त्वां त्यजन्ति
॥३३॥

अरी स्वभाव से चञ्चला लक्ष्मि ! अपने गर्व को त्याग दो। मैं सब जानती हूं । केवल भोगविलासी कामुक जन ही तुम्हारा गुणगान करते हैं। ज्ञानरूपी अमृत के सुखकारी रस से छल-छल करते हुए समुद्र में जो मग्न हैं वे तो विष की तरह तुमको दूर से ही त्याग देते हैं । यहां मन्दाक्रान्ता छन्द में उपमालङ्कार गुम्फित है ॥३३॥

इस पर लक्ष्मी कहती हैं :—

लक्ष्मी :–

रे रे वाणि ! त्वमसि पिशुना त्वाममी बुद्धिहीनाः
विद्यावन्तो जगति कतिचिद्वावदूका भजन्ते[1] ।

---

1. भजन्ति – पाठा० ।

योगोपास्तिप्रचुरगतयो वर्वरामेव मत्वा
तत्त्वज्ञानैर्विमलमतयो मौनमेवाश्रयन्ते[2] ॥३४॥

अरी सरस्वति! तुम चुगलखोर हो। संसार के थोड़े से विद्वान् बुद्धिहीन वाक्पटु ही तुम्हारी उपासना करते हैं। तत्त्वज्ञान से विमलबुद्धि वाले तो योगाराधना में लीन रहते हैं और मौन ही रहते हैं। यहां काव्यलिङ्ग अलङ्कार है ॥३४॥

इस पर सरस्वती जी कहती हैं :—

सरस्वती :—

विद्यावद्भिर्न खलु समता तावकैर्मामकैर्वा
संपद्वृद्धैरति गुरुतरा भारती संपदाद्या।
लक्ष्मीसंपत्तव हि कमले! क्षीयते सर्वकालम्,
लोले लक्ष्मि! क्षतिविरहिता भारतीसंपदुच्चैः
॥३५॥

मेरे विद्वानों तथा तुम्हारे धनवानों की समता नहीं हो सकती हैं क्योंकि वाणी की सम्पत्ति अधिक महान् है। अरी चञ्चले। लक्ष्मि! तेरी सम्पत्ति सदा घटती ही रहती है,

---

2. आश्रयन्ति—पाठ०।

किन्तु मुझ वाणी की सम्पत्ति तो उच्च एवं क्षयहीन है ॥३५॥

इस पर लक्ष्मी कहती हैं :—

लक्ष्मी :—

विद्यावन्तस्तव खलु जनाः मामकीनाः धनाढ्या-
स्तान् सेवन्ते द्रुहिणमहिले तावकाः संपदर्थम् ।
लक्ष्मीभाजां सदसि सततं मानहीना जनास्ते
हंत स्वान्ते तदपि मुखरे वाणि न ग्लानिरास्ते
॥३६॥

हे सरस्वति ! हे ब्रह्मा की स्त्री ! मेरे धनवान् जन की सेवा धन के लिए आपके विद्वान् लोग करते रहते हैं । धनवानों की सभा में तुम्हारे विद्वान सदा मानहीन ही रहते हैं । अरी वाचाले ! खेद की बात है कि फिर भी तुम्हारे मन में ग्लानि नही होती है । ३६॥

इसका प्रत्युत्तर सरस्वती इस प्रकार से देती है : —

सरस्वती :—

वृद्धो भर्ता त्वमसि चपला प्रत्यगारं भ्रमन्ती
काणं कुब्जं वधिरमलसं दुर्विनीतं प्रयासि ।
एकं लक्ष्मी क्षयमुपगते लक्षये भ्रातरि स्वे
तुच्छे लक्ष्मि ! त्वयि बहुतरं लांछनं लक्षयामि
॥३७॥

हे लक्ष्मि ! तेरा पति बूढा है इसोलिए तू चञ्चला प्रत्येक घर में अपने यौवन को बांटती हुई जो काना, कुबरा, वहरा, आलसी और दुष्ट मिलता है उसके पास चली जाती है। श्रीहीन हो जाने पर तुम्हारे भाई (चन्द्रमा) में तो एक ही कलङ्क दीखता है किन्तु तुझ में तो बहुत से दोष दिखाई पड़ते हैं ॥३७॥

इस पर लक्ष्मी कहती है :—

लक्ष्मी :--

रे वाचाले वचनरचनाचारुचातुर्यचित्रे !
वाचो युक्तिस्त्वयि बहुतरा वाणि ! किं तद्विचित्रम् ।
वेदाभ्यासैर्जडमतिरसौ त्वत्प्रियस्तस्यभार्या,
त्वन्मौखर्यं दहति हृदयं स्पर्धसे यन्मुधा[1] माम्
॥३८॥

अरी वर्वरे ! सरस्वति ! तुम वाक्रचना में सुन्दर और और अद्भुत्चातुर्य दिखाने वाली हो। तुझ में वाक्युक्ति बहुत अधिक है, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं हैं। वेदाभ्यास से जड़ बुद्धि वाले ब्रह्मा की तुम पत्नी हो। इसलिए तुम जो मुझ से स्पर्धा कर रही हो, उससे मेरा हृदय जलता है। इसलिए तुम चुप रहो ॥३८॥

---

1. सोदरे ते—पाठा०।

इसका प्रत्युत्तर सरस्वती देती है :—

सरस्वती :--

का वा स्पर्धा प्रकृतिचपले लोलया बाह्यया वा
हेतुः पद्मे ! गुणविगुणता गौरवे लाघवे च ।
लक्ष्मीः प्रायो गुणविरहिता त्वं जडस्य प्रसूतिः
ख्याता चाहं जगति कमले ! गद्यपद्यप्रसूतिः ॥३९॥

हे चञ्चले ! बाह्य चाञ्चल्य से युक्त आपसे किस प्रकार की स्पर्धा की जा सकतीं है ? हे लक्ष्मि ! गुण गौरव का और अवगुण लाघवता का कारण है । तुम गुणों से रहित जड़ पदार्थों की जननी हो और मैं संसार में गद्य-पद्य की सृष्टि करने वाली के रूप में प्रसिद्ध हूं । यहां मन्दाक्रान्ता छन्द में हेतु अलङ्कार का प्रयोग है ॥३९॥

अब लक्ष्मी कहती है :—

लक्ष्मी :—

रे वर्वरे ! भवति भारति ! निर्गुणायाः
दोषावहस्तव हि दुर्वचनाभिलाषः ।
मन्ये तवात्र कृतिभिः खलु दुर्निवार्यं
मौखर्यभाजनमनार्यमनार्यधार्यम् ॥४०॥

अरी वर्वरे ! सरस्वति । तुझ गुणहीना में बहुत से दोष

हैं, जिनमें प्रमुख दुर्वाणी की अभिलाषा है। मैं यह स्वीकार करती हूं कि पण्डितों के द्वारा भी दूर न करने योग्य वाचालता दोष तुम में है जिसे आर्य लोग त्याग देते हैं और अनार्य लोग धारण करते हैं। यहां पर वसन्ततिलका छन्द में काव्यलिङ्ग अलङ्कार है ॥४०॥

इसके बाद पुनः लक्ष्मी ही कहती हैं :—

लक्ष्मी :—

लक्ष्मीति वर्णयुगलं हि ममैव पूर्वम्,
भो वर्वरे सुकृतिनो गणयन्त्यपूर्वम् ।
पश्चाद्गते सति तवापि कदापि लोके,
केचित्प्रसंगवशतो गणनां दिशन्ति ॥४१॥

अरी वर्वरे ! विद्वान् लोग सबसे पहले मेरे ही 'लक्ष्मी' इन दो अपूर्व अक्षरों का उच्चारण करते हैं। संसार में तेरा नाम तो प्रसंगवशात् ही कभी कोई लेता है ॥४१॥

अब सरस्वती बोलती हैं :—

सरस्वती :—

मूर्खासि लक्ष्मि ! चपले विगुणे विबोधे-
नाज्ञे तवास्ति मम वर्णविबोधशक्तिः ।

लघ्वक्षरेति वत पाणिनैव पूर्वं,
जानासि नैव मुनिनैव कृतासि पूर्वम् ।।४२।।

अरी चञ्चले ! गुणरहिते ! अज्ञानशील ! मूढे ! तुझ मूर्ख में मेरे अक्षरों को जानने की शक्ति नहीं है । क्या तू नहीं जानती है कि पाणिनि ने लघु (छोटा-हल्का) अक्षरों को ही पहले रखने का विधान किया है । इसलिए यदि तेरा नाम पहले लिया गया है तो वह व्याकरण के नियम के कारण, न कि तुम्हारे गुण के कारण ।।४२।।

इस पर लक्ष्मी पुन: कहती हैं :–

लक्ष्मी—

रे वर्वरे भवति भारति निर्गुणाया:
दोषावहस्तव हि वर्वरताविलास: ।
मन्ये तवात्र कृतिभि: खलु दुर्निवार्यं
मौखर्यमार्यजनवार्यमनार्यधार्यम् ।।४३।।

यह श्लोक संख्या ४० की पुनरावृत्ति जैसी है ।

अरी वाचाले ! सरस्वति ! तुम निर्गुण हो, तुझ में बहुत से दोष हैं जिनमें प्रमुख बकवास करने की शौक है । मैं यह स्वीकार करती हूं कि पण्डितों के द्वारा न हटाये जाने योग्य वाचालता नामक दोष तुम में है । ऐसे दोषों को अनार्य ही

धारण करते हैं आर्य लोग नहीं । यहां वसन्त तिलका छन्द में काव्यलिङ्ग अलङ्कार है ॥४३॥

इस पर सरस्वती जी कहती हैं :–

सरस्वती—

रे रे जडस्य दुहिते ! नहि ते विषाद:
प्रायस्त्वया[1] मम हि चंचलया विषाद: ।
त्रैलोक्यनाथरमणं समवाप्य लोले !
नाद्यापि हन्त हृदि चञ्चलतां जहासि ॥४४॥

हे लक्ष्मि । तुम जड़ समुद्र की लड़की हो, इसलिए तुझे दुःख की अनुभूति नहीं होती है । दुःख का अनुभव तो मुझे (भावुक) को तुम्हारी चपलता के कारण होता है । क्योंकि तुम त्रिलोकी नाथ जैसे सुन्दर पति को पाकर भी अभी तक हृदय की चंचलता को नहीं छोड़ती है । यहां वसन्ततिलका छन्द में वीप्सा अलङ्कार का प्रयोग है ॥४४॥

इस पर लक्ष्मी बोलती हैं :—

लक्ष्मी :—

दुर्वर्णि ! वाणि ! करवाणि किमत्र यत्र

---

1 तथा—पाठा० ।

प्रायः पतिस्तव जडोऽपटुरित्यवैमि ।
नोचेत्कथं कथय भारुति दुर्निवार्य-
मौखर्यदोषजटिलां कुटिलां दधाति ।।४५।।

हे कटु भाषिणि ! सरस्वति ! तुम्हारा पति ब्रह्मा जड़ एवं अपटु हैं, ऐसा मैं समझती हूं । यदि ऐसी बात नहीं है तो तुम्ही बताओ कि दुर्निवार्य वाचालता दोष से युक्त तुम कुटिला जैसी को वे क्यों धारण करते हैं ।।४५।।

इस पर सरस्वती का प्रत्युत्तर इस प्रकार है :—

सरस्वती—

रे चञ्चले ! तव गुणागुणनिर्विशेषो
मन्ये हरिस्तव पतिः खलु निर्विवेको ।
वक्षस्थलेन भवतीमपि यो विलज्ज-
स्त्वां चञ्चलामचतुरः किमसौ विभर्ति ।।४६।।

अरी चञ्चले। मुझे ऐसा लगता है कि तुम्हारे पति (विष्णु) पूर्णरूप से अविवेकी हैं, जिन्हें तुम्हारे गुणदोष का तनिक भी ज्ञान नहीं हैं। जो मुर्ख और निर्लज्ज तुझ चञ्चला को भी वक्षस्थल पर धारण करते हैं ।।४६।।

इस पर लक्ष्मी गर्व के साथ जवाब देती है—

लक्ष्मी :--

मां धारयन्ति खलु ये ननु तत्र भोगाः
दानादिधर्मसरणिः करिणस्तुरङ्गाः ।
त्वद्धारणेन मुखरे विपदो भवन्ति
मद्द्वारमेव सुधियः समुपाश्रयन्ते[1] ।

हे सरस्वति ! मुझे जो धारण करते हैं उनके पास निश्चय ही सभी प्रकार के भोग रहते हैं और दानादि धर्म भी होते रहते हैं तथा हाथी-घोड़े भी उनके पास ही रहते हैं । लेकिन तुझे धारण करने वालों को केवल विपत्तियां ही आती हैं । फिर वे विद्वान् मेरे ही द्वार का आश्रय लेते हैं ॥४७॥

इस पर सरस्वती बोलती है :—

सरस्वती—

यत्रास्मि तत्र चपले नहि दुःखलेशः
पुण्येन मे सूक्तिनां वदनप्रवेशः ।

---

1 खलु सेवयन्ति—पाठा० ।

क्लेशस्तवैव धनिनां कमलेऽत्र पश्य
ये त्वत्कृते कुमतयः खलु पर्यटन्ति ॥४८॥

अरी चञ्चले ! जहां मैं होती हूं, वहां दु:ख का लेशमात्र नहीं रहता है। मेरा प्रवेश पुण्य के कारण ही किसी भाग्यवानों के मुख में होता है। लेकिन कष्ट तो तुम्हारे धनिकों को होता है। देखो, वे दुर्बुद्ध तुम्हारे लिए इतस्तत: भटकते रहते हैं ॥४८॥

इसके प्रत्युत्तर में लक्ष्मी कहती हैं :=

लक्ष्मी—

भो भारति ! त्वयि रतिं कुशला न कुर्युः
यां प्राप्य दुःखसरणिं विपदामुपैति ।
कुर्वन्ति ये मयि रतिं विपदां विहन्त्रीम्
अभ्येत्य माममुदिनं सुखिनो भवन्ति ॥४९॥

हे सरस्वति ! कुशल व्यक्ति तुझ में अनुरक्ति न रक्खें। क्योंकि तुझको पाकर व्यक्ति संकट में पड़ता है। लेकिन मुझ विपत्ति को नाश करने वाली में जो अनुराग करते हैं, वे मेरे पास आकर नित्यप्रति सुखो रहते हैं ॥४९॥

इसका जवाब सरस्वती देती है :—

सरस्वती :—

व्यर्थं विकत्थयसि किन्नु गुणानभद्रान्
नूनं भवन्ति धनिनो धनदुर्मदान्धाः ।
अस्मद्गुणप्रकरमण्डितपण्डितानां
पाण्डित्यधर्मसरणिर्विधुनोत्यभद्रम् ॥५०॥

अरी चतुरे तुम क्यों व्यर्थ में अपने गुणों को बढ़ाचढ़ा कर कहती हो ? निश्चय ही धनवान् धन के मद में अन्धे होते हैं। लेकिन हमारे गुणों से मण्डित पण्डित लोग पाण्डित्य-रूपी धर्म से अमंगल को दूर कर देते हैं ॥५०॥

लक्ष्मी झट इस पर कह उठती है :—

लक्ष्मी—

आस्तां वृथा लपितमत्र निजस्तवेन
वाग्देवि पूज्यपदवी न विना मयाऽस्ति ।
किं नेह पश्यसि मदीयकथावितानैः
गायन्ति राजभवनेषु जनास्त्वदीयाः ॥५१॥

हे सरस्वति ! अपने स्तव का व्यर्थ अपलाप यहां ठीक नहीं है। हे वाग्देवि ! मेरे विना कोई भी उच्च स्थान को नहीं प्राप्त कर सकता है । क्या तू नहीं जानती है कि तुम्हारे विद्वान् मेरी कथाओं को विस्तार के साथ राजभवनों में गाते रहते हैं ॥५१॥

पुनः सरस्वती कहती है :—

सरस्वती :—

भो भो रमे ! विरम देवि वृथा विवादै-
स्त्वं निर्गुणा गुणवतीभिरलं विवादैः ।
किं पद्मया विगुणया करणीयमार्यै-
र्वाग्दैवतं यदि महर्वदने विभाति ॥५२॥

हे लक्ष्मि ! व्यर्थ विवाद मत करो । तुम निर्गुणा होकर मुझ गुणवती से व्यर्थ ही विवाद करती हो । अगर सरस्वती की कृपा से होने वाला तेज मुँख पर शोभायमान है तो आर्य लोगों को तुम जैसी गुणहीना से क्या प्रयोजन हो सकता है ? ॥५२॥

इस पर लक्ष्मी जी कहती है :—

लक्ष्मी---

भो वर्वरे तव ममापि गुणागुणज्ञाः
ख्यास्यन्त्यमी दिविषदः परमं विशेषम् ।
मध्यस्थितैर्निगदितं परमेव मन्ये
मौखर्यशक्तिनिकरैर्नहि पारयामि ॥५३॥

अरी वर्वरे ! तेरे और मेरे गुणदोष को जानने वाले ये देवता लोग हैं। ये हम दोनों के विशेष को स्वयं बतायेंगे । मध्यस्थों द्वारा कही हुई बात ही उत्तम होती है, ऐसा मैं मानती हूं। तुम्हारी मौखर्यशक्ति से मैं बोलने में मुकावला नहीं कर सकती हूं ॥५३॥

अब सरस्वती भी निर्णय सुनना चाहती है :—

सरस्वती :—

भो निर्जराः परगुणागुणभेदधुर्य्याः
पद्मा मया विवदते भवतां समक्षम् ।
युक्तं न तत्रभवतां भवतां समाजे
वार्या भवद्भिरमरैः किल दुर्निवार्या ॥५४॥

हे देवगण ! आप सब दूसरों के गुण एवं दोषों को जानने में समर्थ हैं। आप लोगों के समक्ष लक्ष्मी मुझ से विवाद

कर रही है। आप पूज्यों के बीच ऐसा विवाद उचित नहीं है। किसी के द्वारा भी न रोके जाने योग्य इस विवाद को आप सब रोकें ॥५४॥

पुनः लक्ष्मी भी कहती है :—

लक्ष्मी :—

वार्येह निर्जरगणैः खलु वर्वरेयं
भार्यारविन्दजनुषः खलु दुर्निवार्या ।
मां या मुहुर्मुहुरहो विशिखाग्रतुल्यै-
र्मर्माभिघातवचनैस्तुदतीयमार्या ॥५५॥

हे देवगण ! आप इस वाचाल को अवश्य रोकें । यह ब्रह्मा की हठीली पत्नी है। यह बाण के अग्रभाग के समान तीक्ष्ण वचनों से मेरे मर्म स्थलों पर आघात पहुंचाती है ॥५५॥

इस पर देवता लोग कहते हैं :—

देवा :—

वाग्देवि वारिधिसुते ! विदितो भवत्यो-

वादस्तथापि गदितं शृणुतामराणाम्[1] ।
युष्मद्गुणप्रकरकीर्तनमत्रकर्तु-
मद्यानवद्यमतयः श्रुतयो निरस्ताः ॥५६॥

हे सरस्वति ! एवं हे लक्ष्मि ! आप दोनों के विवाद को हम लोग समझ चुके हैं, फिर भी देवताओं के कथन को आप दोनों सुनें । आप दोनों के गुणसमूह का वर्णन करने में निर्मल बुद्धि वाले पण्डित एवं वेद भी समर्थ नहीं हैं ।

एवं :--

साकारतः सगुणतापि च निर्गुणत्वै-
राविर्विभाति युवयोरपि निर्गुणत्वम् ।
इत्यात्मनः परमरूपविभावनाभि-
र्देव्यौ भजध्वमुभयोरपि निर्विशेषम् ॥५७॥

आप दोनों में साकारता के कारण सगुणता और गुण-राहित्य के कारण निर्गुणता प्रत्यक्षरूप से प्रकट होती है । इस प्रकार अपने परम स्वरूप का विचार करके आप दोनों अपने निर्विशेष स्वरूप को प्राप्त करें ॥५७॥

---

[1] शृणुतं सुराणाम्--पाठा० ।

वाग्देवतांबुधिसुते निरवद्यवाणी-
मापीय कर्णपुटकैः सकलामराणाम् ।
द्वैतान्धकारमवधूय विमुच्य वैर-
मेकीवभूवतुरुभे परिरंभदंभात् ॥५८॥

सभी देवताओं के वचनों को कानों से सुनकर सरस्वती और लक्ष्मी दोनों अपने पार्थक्यरूप अन्धकार को दूर करके आपस में आलिङ्गन करने के व्याज से एक हो गयीं ।।५८ ।

अब्दे खश्रुतिसागरेन्दु (१७४०) कलिते पक्षेऽवलक्षेतरे
सन्मास्याश्विनके हरेः शुभतिथौ श्रीमद्गुरोर्वासरे ।
श्रीवाण्योरिहतीर्थराजनगरे सद्वादमत्यद्भुतं
रामानन्दसुधीश्चकार विदुषां निर्मत्सराणां मुदे
॥५९॥

संवत् १७४० ई० के आश्विनमास के कृष्णपक्ष को हरि की शुभतिथि द्वादशी को गुरुवार के दिन तीर्थराज प्रयाग में द्वेषरहित विद्वानों की प्रसन्नता के लिए विद्वान् रामानन्द ने "लक्ष्मी और सरस्वती" के अत्यद्भुत सद्वाद को रचा ।।५९।।

एतस्मिन् मम गद्यपद्यरचनामाधुर्यमोदप्रदे
श्रीवाण्योरितरेतरोक्तिगहने वादे मदीये बुधाः ।
स्यादेवानवधानतः खलु यथाश्वेनापि संगच्छतां
तद्वन्मे स्खलनं तदत्र कृतिभिः क्षन्तव्यमित्यञ्जलिः
॥६०॥

गद्य-पद्य मयी, माधुर्य रस का आनन्ददात्री श्री तथा वाणी की अन्योन्य उक्ति रूप गहनवाद से युक्त मेरी इस रचना में असावधाना-वश अगर कोई त्रुटि हो तो आप विद्वज्जन घोड़े से गिरे हुये व्यक्ति के समान मुझे भी क्षमा करेंगे ऐसी मेरी करबद्ध प्रार्थना है ।।६०॥

इति श्रीमत्सरयूपारीणपण्डितधुरीणमहाकुलीन-श्रीमत्त्रिपाठिमधुकरसत्संतान त्रिपाठि-रामानन्दशर्म-विनिर्मितो लक्ष्मीसरस्वत्योर्विवादः समाप्तः ॥
सम्वत् १९४१, पौषमासे कृष्णे पक्षे द्वितीयायां गुरुवासरे ॥

इस प्रकार सरयूपारीण ब्राह्मण जाति के पण्डितों में अग्रगण्य महाकुलीन श्रीमान् त्रिपाठिमधुकर के सुपुत्र रामानन्द

त्रिपाठी के द्वारा रचित "लक्ष्मी और सरस्वती का विवाद" समाप्त है ॥

भारती सर्वदा पातु लक्ष्मीश्चापि सदाऽवतु ।
नास्ति कश्चित्तयोर्भेदो ध्येयस्तादृक् विचक्षणः ॥

(उमारमणझा)

(विभा टीका समाप्ता)



श्लोकानुक्रमणिका

———

विशिष्ट शब्दावली

अब्ज=कमल,
अमर=देवता,
अम्बुधिसुता=लक्ष्मी,
इन्द्र=देवताओं का राजा,
उपेन्द्र=विष्णु,
कमला=लक्ष्मी,
कूर्म=विष्णु का द्वितीय अवतार, (कछुआ)
गणिका=वैश्या,
तीर्थराज=प्रयाग,
त्रिदश=देवता,
दनुज=दानव,
दिविषद=देवता लोग,
द्यूत=जुआ,
निर्जर=देवता,
पद्मा=लक्ष्मी,
पाणिगि=व्याकरण शास्त्र के प्रवर्तक विद्वान्
पिशुन=चुगलखोर,
पौलस्त्य=रावण,
ब्रह्मा=सृष्टिकर्त्ता
भारती=सरस्वती,
भेकी=मेढकी,
मत्स्य=मछली, विष्णु का प्रथम अवतार,
रत्नाकर=समुद्र,
रमा=लक्ष्मी,
लोला=चञ्चल,
वर्वरे=वहुत बोलने वाला,
वाग्देवि=सरस्वती
वाणी=सरस्वती,
वारिधिसुधता=लक्ष्मी,
वास्तोष्पतिः=इन्द्र
व्यास=महाभारतकर्त्ता,
शर्म=कल्याण,
श्रुति=वेद,
सद्म=घर,
सुरगुरु=वृहस्पति
सुधर्मा=देवसभा,
हालाहल=विष ।

डा० उमारमण झा की रचनाएं :

प्रकाशित : -

१. न्यायसारविचार:, २. दशपदार्थशास्त्रम्, ३. लक्ष्मीसरस्वत्योर्विवाद:, ४ विद्यापति कृत चिकित्साञ्जनम् (मैथिली अकादमी; द्वारा प्रकाशनाधीन)।

अप्रकाशित रचनाएं :-

१. मध्यवर्ती न्यायशास्त्र का एक अध्ययन (पीएच. डी. का शोधग्रन्थ।

२. भासर्वज्ञ-एक अध्ययन (डी. लिट् का शोधग्रन्थ)।

३ तन्त्र एवं भक्ति (महामहोपाध्याय का शोध ग्रन्थ)

४. ललिता सहस्रनाम व्याख्या (अंग्रेजी में)

५. तर्कप्रवेश: (अंग्रेजी से संस्कृत अनुवाद)

६. नवमालिका नाटकम् (संस्कृत-हिन्दी)

७. रूपसी (उपन्यास बंगला मे)

८. व्याकरणसार (५ खण्डों में १००० पृ०)

९. आचार्य विशेश्वरपाण्डेय-कृतित्व एवं व्यक्तित्व।

१०. दशमहाविद्या: (संस्कृत में)

११. कथा-साहित्य-सर्वेक्षणम् (संस्कृत में)

१२. मैथिली कविता संग्रह (स्वरचित २०० पृ०)

१३. संस्कृत श्लोक संग्रह (स्वरचित १५० पृ०)

१४ संस्कृत साहित्य मे मिथिला का योगदान।

१५. ऋषिकेश संहिता, (संस्कृत सम्पादनम्)।

१६ भक्तकथा: (संस्कृत) १७ सटीक गोवर्धन भट्टग्रन्था:

१८. मारुति-स्तोत्र-कदम्ब।

१९. नायक-नायिका-रस विचार:

२०. कृष्णामृत महार्णवम् (संस्कृ

२१. निबन्ध संग्रह तथा कथा सं

२२. श्री अनन्तलाल-ठाकुर-अभि
सम्पादित, प्रकाशनाधीन)